फ़िल्म समीक्षा

न्याय का आह्वान

जुही जैन

फ़िल्म का नाम : इनवोकिंग जस्टिस
भाषा : तमिल (अंग्रेज़ी सब-टाइटिल के साथ)
अवधि : 86 मिनट
निर्देशन : दीपा धनराज

भारत में पारम्परिक क़ानून की कमान हर समुदाय में पुरुषों के हाथों में केंद्रित रहती है और ये सामुदायिक प्रतिनिधि अपने वर्ग, उम्र, धर्म और रुतबे के अनुसार चुने जाते हैं। जहां तक मुस्लिम पारिवारिक क़ानून की बात है तो इससे संबद्ध सभी मसले पांच पुरुषों की एक 'जमात' द्वारा निपटाये जाते हैं। हालांकि हम यह नहीं जानते कि ये पांच 'जमात' के सदस्य इसे ओहदे पर कैसे आते हैं पर हम यह ज़रूर अंदाज़ा लगा सकते हैं कि ये समुदाय के आम लोगों में से ही नियुक्त किए जाते हैं। इन पांच व्यक्तियों के हाथों में असीमित सत्ता का केंद्रीकरण होता है— जीवन और मौत की सज़ा सुनाने तक की ताकत इन हाथों में दी जाती है।

1988 में जब शरीफ़ा ख़ानम *अखिल भारतीय महिला सम्मेलन* में शामिल हुई तब वे महज़ एक अनुवादक थी। सम्मेलन में एक अहम विषय था महिलाओं के साथ हिंसा। शरीफ़ा खानम ने सोचा— क्या हम इस विषय पर बात कर सकते हैं? हिंसा तो हर दूसरी औरत के साथ होती है। अगर वह अपने पिता या पति की बात न माने तो क्या यह उनका हक़ नहीं बनता कि वे उसे रास्ते पर लाएं? इस सम्मेलन में बोया हुआ यह बीज उसके मन में जड़ पकड़ने लगा। तमिलनाडु में अपने मुसलमान समुदाय के संदर्भ में उसने महसूस किया कि औरतों के साथ होने वाले अन्याय का लगभग 90% पुरुषों की जमात द्वारा दिए गए फ़ैसलों का नतीज़ा था। बस इसी विचार ने उसे औरतों की जमात शुरू करने का हौसला दिया।

दीपा धनराज का वृत्तचित्र *इनवोकिंग जस्टिस* यानी न्याय का आह्वान तमिलनाडु की पहली परन्तु बेहद सशक्त औरतों की जमात पर आधारित है। कुछ सालों पहले तक औरतों को अपने मामलों की सुनवाई में मौजूद होने का भी अधिकार नहीं था। वे केवल खामोशी से फ़ैसले सुनती थी और उन पर अमल करती थीं। यहां यह कहना बेमानी होगा कि जमात के किसी भी फ़ैसले का विरोध करना उनके हक़ में नहीं था। इस वृत्तचित्र में दर्शाए गए दोनों मामले दो युवा लड़कियों के कत्ल से संबंधित हैं।

फ़िल्म की निर्देशक दीपा धनराज का कहना है— 'इन सभी औरतों को एक साथ हंसते, रोते, बातें करते, खेत जोतते और अपने समुदाय के न्याय संबंधी मामलों को एक संगठित तरीक़े से संबोधित करते हुए देखना मेरे लिए एक बेहद सशक्त अनुभव था। ये औरतें सदियों पुरानी उस सोच को चुनौती दे रही थी कि औरतें अपने अधिकारों के लिए खड़ी नहीं हो सकतीं। मुझे महसूस हुआ कि इन औरतों के अनुभव को देखकर दुनियाभर की औरतों को एक ताक़त का एहसास होगा। खुद नाइंसाफ़ी सहने वाली कितनी ही औरतें आज एक साथ उठ खड़ी हुई हैं। इससे अच्छी बात और क्या होगी?'

इस वृत्तचित्र के माध्यम से यह दिखाने की कोशिश की गई है कि पुरुष जमात की नाइंसाफ़ी और महिला विरोधी सोच को चुनौती देने के लिए मुसलमान महिलाओं ने यह एक ठोस कदम उठाया है। इस महिला जमात की शुरूआत 2004 में की गई थी और आज यह जमात पारिवारिक न्याय से जुड़े सभी मामलों में मार्गदर्शन, पैरवी और फ़ैसले सुनाती है। फ़िल्म में जमात की सदस्याओं का मामलों की तहकीकात, मध्यस्तता, परिवरों के साथ समझौता, पुलिस व पुरुष जमात के साथ कौशल, दृढ़ता और पक्के इरादे के साथ बातचीत करते हुए दिखाया गया है। इन महिलाओं की धर्म और न्याय दोनों के प्रति आस्था एक मिसाल के रूप में उभरती है। फ़िल्म में निर्देशक अपने कैमरे के साथ जमात की औरतों के साथ उनके पास आए मामलों से संबंधित पक्षों से मिलने उनके घर जाती है। कैमरे ने इस बात को बखूबी रिकार्ड किया है कि जमात की महिलाएं किस प्रकार मुद्दों पर अपनी समझ, कुरान और मानवतावादी सोच के बीच तालमेल बैठाकर एक भ्रष्ट, पूर्वाग्रह गस्त और विरोधी समाज के बीच काम करती हैं।

दक्षिण भारत की इस महिला जमात में अब तक तलाक़, घरेलू हिंसा से लेकर हत्या और बलात्कार संबंधी आठ हज़ार मामलों का निपटारा किया है। तमिलनाडु के 12 ज़िलों में लगभग 12000 की सदस्यता वाली यह जमात एक सड़ी-गली और भ्रष्ट व्यवस्था की जवाबदेयी स्थापित करने का एक बेहद सशक्त मंच है जिसमें पुरुष कुरान की मनमानी और रुढ़िवादी व्याख्या करके औरतों के ख़िलाफ़ भेदभाव, असमानता और हिंसा को बरकरार रखने की कोशिश में लगे हैं।

जुही जैन नारीवादी कार्यकर्ता व हम सबला की सम्पादक हैं।